****

**Suryakant Tripathi Nirala**

**Born** 1896

**Died** 1961

**Poetry:**

**Maun**

# बैठ लें कुछ देर, आओ,एक पथ के पथिक-से प्रिय, अंत और अनन्त के, तम-गहन-जीवन घेर। मौन मधु हो जाए भाषा मूकता की आड़ में, मन सरलता की बाढ़ में, जल-बिन्दु सा बह जाए। सरल अति स्वच्छ्न्द जीवन, प्रात के लघुपात से, उत्थान-पतनाघात से रह जाए चुप,निर्द्वन्द ।

# **Tumhe Khojta Tha Main**

तुम्हें खोजता था मैं,  
पा नहीं सका,  
हवा बन बहीं तुम, जब  
मैं थका, रुका ।

मुझे भर लिया तुमने गोद में,  
कितने चुम्बन दिये,  
मेरे मानव-मनोविनोद में  
नैसर्गिकता लिये;

सूखे श्रम-सीकर वे  
छबि के निर्झर झरे नयनों से,  
शक्त शिरा‌एँ हु‌ईं रक्त-वाह ले,  
मिलीं – तुम मिलीं, अन्तर कह उठा  
जब थका, रुका

# **Bhar Dete Ho**

भर देते हो  
बार-बार, प्रिय, करुणा की किरणों से  
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो ।

मेरे अन्तर में आते हो, देव, निरन्तर,  
कर जाते हो व्यथा-भार लघु  
बार-बार कर-कंज बढ़ाकर;

अंधकार में मेरा रोदन  
सिक्त धरा के अंचल को  
करता है क्षण-क्षण-

कुसुम-कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण  
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,  
नव प्रभात जीवन में भर देते हो ।

# **Todti Paththar**

वह तोड़ती पत्थर;  
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर-

वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार  
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;  
श्याम तन, भर बंधा यौवन,  
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,  
गुरु हथौड़ा हाथ,  
करती बार-बार प्रहार:-  
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप;  
गर्मियों के दिन,   
दिवा का तमतमाता रूप;  
उठी झुलसाती हुई लू  
रुई ज्यों जलती हुई भू,  
गर्द चिनगीं छा गई,

प्रायः हुई दुपहर :-

वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार  
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;  
देखकर कोई नहीं,  
देखा मुझे उस दृष्टि से  
जो मार खा रोई नहीं,  
सजा सहज सितार,  
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।

एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,  
ढुलक माथे से गिरे सीकर,  
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा-

“मैं तोड़ती पत्थर।”

# **Kavi Kah Gaya**

स्नेह-निर्झर बह गया है !  
रेत ज्यों तन रह गया है ।

आम की यह डाल जो सूखी दिखी,  
कह रही है-“अब यहाँ पिक या शिखी  
नहीं आते; पंक्ति मैं वह हूँ लिखी  
नहीं जिसका अर्थ-  
          जीवन दह गया है ।”

“दिये हैं मैने जगत को फूल-फल,  
किया है अपनी प्रतिभा से चकित-चल;  
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल–  
ठाट जीवन का वही  
          जो ढह गया है ।”

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,  
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा ।  
बह रही है हृदय पर केवल अमा;  
मै अलक्षित हूँ; यही  
          कवि कह गया है ।

# **Bharat Vandana**

भारति, जय, विजय करे  
कनक-शस्य-कमल धरे!

लंका पदतल-शतदल  
गर्जितोर्मि सागर-जल  
धोता शुचि चरण-युगल  
स्तव कर बहु अर्थ भरे!

तरु-तण वन-लता-वसन  
अंचल में खचित सुमन  
गंगा ज्योतिर्जल-कण  
धवल-धार हार लगे!

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार  
प्राण प्रणव ओंकार  
ध्वनित दिशाएँ उदार  
शतमुख-शतरव-मुखरे!

# **Gahan Hai Ye Andhkara**

गहन है यह अंधकारा;  
स्वार्थ के अवगुंठनों से  
हुआ है लुंठन हमारा।

खड़ी है दीवार जड़ की घेरकर,  
बोलते है लोग ज्यों मुँह फेरकर  
इस गगन में नहीं दिनकर;  
नही शशधर, नही तारा।

कल्पना का ही अपार समुद्र यह,  
गरजता है घेरकर तनु, रुद्र यह,  
कुछ नही आता समझ में   
कहाँ है श्यामल किनारा।

प्रिय मुझे वह चेतना दो देह की,  
याद जिससे रहे वंचित गेह की,  
खोजता फिरता न पाता हुआ,  
मेरा हृदय हारा।

# **Kuch Na Hua**

कुछ न हुआ, न हो  
मुझे विश्व का सुख, श्री, यदि केवल

पास तुम रहो!

मेरे नभ के बादल यदि न कटे-

चन्द्र रह गया ढका,

तिमिर रात को तिरकर यदि न अटे

लेश गगन-भास का,

रहेंगे अधर हँसते, पथ पर, तुम

हाथ यदि गहो।

बहु-रस साहित्य विपुल यदि न पढ़ा–

मन्द सबों ने कहा,

मेरा काव्यानुमान यदि न बढ़ा–

ज्ञान, जहाँ का रहा,

रहे, समझ है मुझमें पूरी, तुम

कथा यदि कहो।

# **Abhi Na Hoga Mera Aant**

अभी न होगा मेरा अन्त

अभी-अभी ही तो आया है   
मेरे वन में मृदुल वसन्त-   
अभी न होगा मेरा अन्त

हरे-हरे ये पात,   
डालियाँ, कलियाँ कोमल गात!

मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर   
फेरूँगा निद्रित कलियों पर   
जगा एक प्रत्यूष मनोहर

पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूँगा मैं,   
अपने नवजीवन का अमृत सहर्ष सींच दूँगा मैं,

द्वार दिखा दूँगा फिर उनको   
है मेरे वे जहाँ अनन्त-   
अभी न होगा मेरा अन्त।

मेरे जीवन का यह है जब प्रथम चरण,   
इसमें कहाँ मृत्यु?   
है जीवन ही जीवन   
अभी पड़ा है आगे सारा यौवन   
स्वर्ण-किरण कल्लोलों पर बहता रे, बालक-मन,

मेरे ही अविकसित राग से   
विकसित होगा बन्धु, दिगन्त;   
अभी न होगा मेरा अन्त।

# **Var De**

वर दे, वीणावादिनि वर दे !  
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव  
        भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन-स्तर  
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;  
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर  
        जगमग जग कर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव  
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;  
नव नभ के नव विहग-वृंद को  
        नव पर, नव स्वर दे !

वर दे, वीणावादिनि वर दे।

# **Kyu Yaha Aay**

नहीं मालूम क्यों यहाँ आया  
ठोकरें खाते हु‌ए दिन बीते ।  
उठा तो पर न सँभलने पाया  
गिरा व रह गया आँसू पीते ।

ताब बेताब हु‌ई हठ भी हटी  
नाम अभिमान का भी छोड़ दिया ।  
देखा तो थी माया की डोर कटी  
सुना व’ कहते हैं, हाँ खूब किया ।

पर अहो पास छोड़ आते ही  
वह सब भूत फिर सवार हु‌ए ।  
मुझे गफलत में ज़रा पाते ही  
फिर वही पहले के से वार हु‌ए ।

एक भी हाथ सँभाला न गया  
और कमज़ोरों का बस क्या है ।  
कहा – निर्दय, कहाँ है तेरी दया,  
मुझे दुख देने में जस क्या है ।

रात को सोते य’ सपना देखा  
कि व’ कहते हैं “तुम हमारे हो  
भला अब तो मुझे अपना देखा,  
कौन कहता है कि तुम हारे हो ।

अब अगर को‌ई भी सताये तुम्हें  
तो मेरी याद वहीं कर लेना  
नज़र क्यों काल ही न आये तुम्हें  
प्रेम के भाव तुर्त भर लेना” ।

# **Sandhya Sundar**

दिवसावसान का समय-  
मेघमय आसमान से उतर रही है  
वह संध्या-सुन्दरी, परी सी,  
धीरे, धीरे, धीरे  
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,  
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,  
किंतु ज़रा गंभीर, नहीं है उसमें हास-विलास।  
हँसता है तो केवल तारा एक-  
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,  
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।  
अलसता की-सी लता,  
किंतु कोमलता की वह कली,  
सखी-नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,  
छाँह सी अम्बर-पथ से चली।  
नहीं बजती उसके हाथ में कोई वीणा,  
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,  
नूपुरों में भी रुन-झुन रुन-झुन नहीं,  
सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द-सा ‘चुप चुप चुप’  
है गूँज रहा सब कहीं-

व्योम मंडल में, जगतीतल में-  
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में-  
सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षस्थल में-  
धीर-वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में-  
उत्ताल तरंगाघात-प्रलय घनगर्जन-जलधि-प्रबल में-  
क्षिति में जल में नभ में अनिल-अनल में-  
सिर्फ़ एक अव्यक्त शब्द-सा ‘चुप चुप चुप’  
है गूँज रहा सब कहीं-

और क्या है? कुछ नहीं।  
मदिरा की वह नदी बहाती आती,  
थके हुए जीवों को वह सस्नेह,  
प्याला एक पिलाती।  
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,  
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने।  
अर्द्धरात्री की निश्चलता में हो जाती जब लीन,  
कवि का बढ़ जाता अनुराग,  
विरहाकुल कमनीय कंठ से,  
आप निकल पड़ता तब एक विहाग!

# **Sah Jate Ho**

सह जाते हो  
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,  
हृदय तुम्हारा दुबला होता नग्न,  
अन्तिम आशा के कानों में  
स्पन्दित हम – सबके प्राणों में  
अपने उर की तप्त व्यथाएँ,  
क्षीण कण्ठ की करुण कथाएँ  
कह जाते हो  
और जगत की ओर ताककर  
दुःख हृदय का क्षोभ त्यागकर,  
सह जाते हो।  
कह जातेहो-  
“यहाँकभी मत आना,  
उत्पीड़न का राज्य दुःख ही दुःख  
यहाँ है सदा उठाना,  
क्रूर यहाँ पर कहलाता है शूर,  
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर;  
स्वार्थ सदा ही रहता परार्थ से दूर,  
यहाँ परार्थ वही, जो रहे  
स्वार्थ से हो भरपूर,  
जगतकी निद्रा, है जागरण,  
और जागरण जगत का – इस संसृति का  
अन्त – विराम – मरण  
अविराम घात – आघात  
आह ! उत्पात!  
यही जग – जीवन के दिन-रात।  
यही मेरा, इनका, उनका, सबका स्पन्दन,  
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन।  
यही मेरा, इनका, उनका, सबका जीवन,  
दिवस का किरणोज्ज्वल उत्थान,  
रात्रि की सुप्ति, पतन;  
दिवस की कर्म – कुटिल तम – भ्रान्ति  
रात्रि का मोह, स्वप्न भी भ्रान्ति,  
सदा अशान्ति!”

# **Bhikhkshuk (a Beggar)**

वह आता–  
दो टूक कलेजे के करता पछताता   
पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,  
चल रहा लकुटिया टेक,  
मुट्ठी भर दाने को– भूख मिटाने को  
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता–  
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,  
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते,  
और दाहिना दया दृष्टि-पाने की ओर बढ़ाये।  
भूख से सूख ओठ जब जाते  
दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते?–  
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।  
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,  
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए!

# **Raje Ne Apni Rakhwali Ki**

राजे ने अपनी रखवाली की;  
किला बनाकर रहा;  
बड़ी-बड़ी फ़ौजें रखीं ।  
चापलूस कितने सामन्त आए ।  
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए ।  
कितने ब्राह्मण आए  
पोथियों में जनता को बाँधे हुए ।  
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाए,  
लेखकों ने लेख लिखे,  
ऐतिहासिकों ने इतिहास के पन्ने भरे,  
नाट्य-कलाकारों ने कितने नाटक रचे  
रंगमंच पर खेले ।  
जनता पर जादू चला राजे के समाज का ।  
लोक-नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं ।  
धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ ।  
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर ।  
ख़ून की नदी बही ।  
आँख-कान मूंदकर जनता ने डुबकियाँ लीं ।  
आँख खुली– राजे ने अपनी रखवाली की ।